४२ वाँ कलश।

वर्णाद्यैः सहितस्तथा विरहितो द्वेधास्त्यजीवो यतो
नामूर्तत्वमुपास्य पश्यति जगज्जीवस्य तत्त्वं ततः।
इत्यालोच्य विवेचकैः समुचितं नाव्याप्यतिव्यापि वा
व्यक्तं व्यंजितजीवतत्त्वमचलं चैतन्यमालंब्यताम्।।४२।।

क्या कहते हैं ? **'यतः अजीवः अस्ति द्वेधा' अजीव दो प्रकार के हैं...** इस चैतन्य को अनुभव करने में ये काम नहीं करते-यह बात करते हैं। राग-द्वेष, पुण्य-पाप, यह चैतन्य के अनुभव का लक्षण नहीं है। यह चैतन्य का लक्षण नहीं है, वैसे इसे अमूर्तपना कहना, यह भी जीव का वास्तविक लक्षण नहीं है क्योंकि अमूर्त तो धर्मास्ति आदि दूसरे भी अमूर्त पदार्थ हैं। यह बात करते हैं। जरा सूक्ष्म बात है **'वर्णाद्यैः सहितः'** वर्ण, गन्ध, रागादि **और वर्णादिरहित;...** अमूर्त, **इसलिए अमूर्तत्व का आश्रय लेकर भी (अर्थात् अमूर्तत्व को जीव का लक्षण मानकर भी) जीव के यथार्थ स्वरूप को...** जगत् के प्राणी नहीं जान सकते।

यह जीव-भगवान आत्मा तो ज्ञान लक्षण से लक्षित है, ज्ञान से ज्ञात हो - ऐसी यह चीज़ है। इसे राग से ज्ञात हो, ऐसा नहीं और अमूर्त से ज्ञात हो (ऐसा नहीं)। क्योंकि अमूर्त तो परद्रव्य भी है। आहाहा! राग से ज्ञात नहीं होता और अमूर्तपने से ज्ञात नहीं होता। आहा! यह तो ज्ञानस्वरूप भगवान, ज्ञान के परिणाम से ज्ञात हो ऐसा है। आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा! तब इसे धर्म होता है। ज्ञान द्वारा आत्मा को जाने, राग से नहीं, पुण्य—दया, दान के विकल्प से नहीं, वह विकार है, उससे ज्ञात नहीं होता, क्योंकि विकार सभी अवस्थाओं में व्याप्त नहीं है और अमूर्तपना तो दूसरों में भी है, तो उससे जीव को भिन्न नहीं जाना जा सकता।

जीव को भिन्न जानने के लिये जिसे जीव-चैतन्य है, उसे जिसे जानना है, उसे ज्ञानलक्षण द्वारा-चैतन्यलक्षण द्वारा जान सकेगा। आहाहा! इस चैतन्य द्वारा उसका अनुभव कर सकेगा। समझ में आया? अर्थात् चैतन्य-ज्ञानलक्षण चैतन्य के द्वारा वह ज्ञात होगा, तब उसे आत्मा जानने में आयेगा, तब उसे आत्मा का अनुभव चैतन्य से ज्ञात होगा, अनुभव होगा। ऐसी बातें हैं। **इस प्रकार परीक्षा करके...** हे जगत के जीवों... '**जगत् न पश्यति**' इसका अर्थ इस जगत के प्राणी। रागादि से भी आत्मा को नहीं जान सकते। अमूर्तपने से भी आत्मा को नहीं जान सकते। इसलिए हे जगत् के प्राणियों! '**न पश्यति**' इस प्रकार आत्मा नहीं जाना जा सकता। **इस प्रकार परीक्षा करके...** देखा? आहा! '**विवेचकैः**' **भेदज्ञानी पुरुषों ने...** अर्थात् जिन्हें राग से और अमूर्त से भी भिन्न ऐसा चैतन्य लक्षण है, ऐसा जो भेदज्ञानी धर्मी... आहाहा! धर्म की शुरुआतवाले जीव-धर्म की पहली सीढ़ी में रहे हुए जीव। आहाहा! वे राग से और अमूर्तपने के लक्षण से भी भिन्न, ऐसा विचारकर **भेदज्ञानी पुरुषों ने अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दूषणों से रहित...** रागादि हैं, वे सर्व अवस्थाओं में व्याप्त नहीं होते; इसलिए अव्याप्ति हैं और अमूर्तपना है, वह दूसरे में भी है; इसलिए वह अतिव्याप्ति है - ऐसे अव्याप्ति... अब ऐसी भाषा बनियों को कहाँ से आये? पुस्तक में आती नहीं और उनके उपदेश में ऐसा कुछ आता नहीं। (वहाँ तो ऐसा आता है) दया पालो, व्रत करो, अपवास करो... आहाहा! यह सब तो राग की क्रियायें हैं और राग करना तथा राग का अनुभव करना, वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! उसमें धर्म नहीं है;

धर्म तो राग से रहित भगवान और अमूर्तपने से भी ज्ञात नहीं हो सकता क्योंकि अमूर्तत्व तो दूसरों में भी है।

ज्ञान में ज्ञान / जानना, ऐसा स्वभावलक्षण, उससे वह अनुभव किया जा सकता है। आहाहा! यहाँ तो व्यवहार दया, दान, व्रत, भक्ति से भी आत्मा जाना जा सके या अनुभव किया जा सके (-ऐसा) नहीं है। आहाहा! तथा अमूर्तपने से भी उसका दूसरे द्रव्यों से भिन्नपना जाना नहीं जा सकता। अमूर्त तो दूसरों में भी है—धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश (और काल में भी है)। आहाहा!

इसलिए ऐसा जानकर **चेतनत्व को जीव का लक्षण कहा है...** देखा? यह सार आया। जाननस्वभाव जो जानना.. जानना.. जानना.. यह चैतन्यतत्त्व का लक्षण (है)। इस ज्ञान के लक्षण द्वारा आत्मा का लक्ष्य करके अनुभव हो सकता है। वह सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है। आहाहा! धर्म की पहली श्रेणी। ज्ञान, वह आत्मा—ऐसे लक्षण से लक्ष्य को पकड़े... राग की कोई क्रिया दया, दान, व्रत, भक्ति वह कोई आत्मा का लक्षण नहीं है, वह तो राग है। आहाहा! अभी तो यही चलता है। यहाँ तो कहते हैं प्रभु! राग है, वह अव्याप्ति है, आत्मा की प्रत्येक अवस्था में नहीं रहता। संसार अवस्था में हो, परन्तु मोक्ष अवस्था में नहीं है; इसलिए वह अव्याप्ति है। आत्मा में प्रत्येक अवस्था में व्याप्ति / रहा नहीं है, इसलिए वह राग आत्मा का लक्षण नहीं है। आहाहा! इसलिए उस राग से आत्मा ज्ञात हो - ऐसा नहीं है। आहाहा! तथा अमूर्त आत्मा को जाने तो अमूर्तपना भी अतिव्याप्ति में जाता है। अपने में भी है और पर में भी है। यह धर्मास्ति, अधर्मास्ति में (भी है इसलिए) अतिव्याप्ति हो जाता है। उससे भी भगवान आत्मा जाना नहीं जा सकता। ऐसा विचार करके भेदज्ञानी जीवों ने... आहाहा! **चेतनत्व को जीव का लक्षण कहा है...** ऐसी बात है। जानने की जो दशा है, वह लक्षण है और उस द्वारा आत्मा अनुभव किया जा सकता है। आहाहा! उस चैतन्य के ज्ञान के परिणाम से चैतन्यत्रिकाली है, ऐसा जाना जा सकता है। इसका नाम धार्मिकक्रिया कहा जाता है। चैतन्य लक्षण से लक्ष्य को पकड़ना, ऐसी जो ज्ञान की क्रिया, वह धर्म है। आहाहा!

वह योग्य है। चेतनपने को जीव का लक्षण '**समुचितं**' सम+उचितं - ऐसा।

बराबर / योग्य, समुचित है, ऐसा कहते हैं। आत्मा को राग से बतलाना वह ज्ञात नहीं होगा, अमूर्त से बतलाना, वह ज्ञात नहीं होगा, वह चैतन्य के ज्ञान के लक्षण से ज्ञात होता है, वह समुचित है, सम्यक् प्रकार से उचित है। वह (राग या अमूर्तत्व) अनुचित था। राग से ज्ञात होता है, यह अनुचित था क्योंकि राग इसकी प्रत्येक अवस्था में नहीं है; अमूर्त से ज्ञात हो, वह अतिव्याप्ति-पर में भी था; इसलिए उससे भी ज्ञात नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : न्यायशास्त्र में भी ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : न्यायशास्त्र की यह युक्ति / बात की है। भाई! प्रभु! तू कौन है? इस ज्ञान के जानपने द्वारा ज्ञात हो, ऐसा तू है। आहाहा! इस राग की क्रिया दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा यह सब तो राग है। यह राग तेरी प्रत्येक दशा में नहीं है; इसलिए यह राग तेरा लक्षण नहीं है। लक्षण उसे कहते हैं कि जो प्रत्येक अवस्था में हो। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसी बातें! आहाहा!

भगवान वीतराग सर्वज्ञदेव परमेश्वर का यह हुकम है। आहाहा! आहाहा! सम्प्रदाय में तो बस, यह दया पालो, व्रत करो और... यह सम्प्रदाय में हो तो भक्ति करो... क्या कहलाता है? पूजा और शत्रुंजय की यात्रा, सम्मेदशिखर की और गिरनार की (यात्रा), लो! यह सब तो राग है, यह तो सब राग की क्रिया है। आहाहा! यह राग की क्रिया आत्मा में प्रत्येक अवस्था में व्याप्त नहीं है; इसलिए यह इसका लक्षण नहीं है; इस कारण वह राग से ज्ञात हो - ऐसा नहीं है। इसमें तीनों काल ज्ञानस्वरूप है, इसलिए ज्ञान इसका लक्षण है और ज्ञान से यह ज्ञात हो ऐसा है। आहाहा! ऐसी बात है। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वर का मार्ग कोई अपूर्व है। आहाहा! उसकी तो अभी सब प्ररूपणा बदल गयी हैं। आहाहा! जो व्रत और तप, वह राग है, उससे तुम्हें धर्म होगा, ऐसी पूरी प्ररूपणा बदल गयी है, उपदेश बदल गया है। ओहोहो!

यहाँ तो कहते है कि प्रभु अन्दर चैतन्यबिम्ब प्रभु, ज्ञान का पिण्ड, वह तो ज्ञान का पिण्ड है। जिसमें से अनन्त... अनन्त... अनन्त... केवलज्ञान आदि प्रगट हो तो भी उसमें कमी नहीं आती - ऐसा वह ज्ञान का कन्द है। आहाहा! ज्ञान जिसका मूल है,.. आहाहा! वह वर्तमान ज्ञान-जानना जो है, राग से भिन्न, अमूर्तपने से भिन्न... आहाहा! ऐसा जो ज्ञान-

वर्तमान ज्ञान-सम्यग्ज्ञान के द्वारा आत्मा जाना जा सकता है, अनुभव किया जा सकता है, क्योंकि यह इसका समुचित लक्षण है। सम-उचित / योग्य उचित है, आहाहा! यह निर्दोष (लक्षण) है। समझ में आया? आहाहा! अब ऐसी बातें।

वे तो इच्छामि पडिक्कमूणं इरिया विरणाये गम खाण मणे.... करते थे। लो हो गया धर्म! धूल में भी नहीं। तस्स उत्तरि करणेण कऊ ठाणेणं मोणेणं माणेणं अप्पाणं वोसिरामी... अर्थ का भी पता नहीं होता। अरे! प्रभु का मार्ग कहीं रह गया, लोगों ने कुछ मान लिया। प्रभु अर्थात् तू, हों! प्रभु ने तो कहा है परन्तु तू वैसा है। ज्ञान लक्षण से ज्ञात हो, ऐसा प्रभु तू है। आहाहा! इस राग की क्रिया से, अमूर्तपने से दूसरे में भी अमूर्त है ऐसा इससे भी तू तुझे भिन्न नहीं कर सकता। आहाहा! समझ में आया?

वह योग्य है। वह चैतन्य-लक्षण प्रगट है,... आहाहा! क्योंकि जानने की पर्याय भी प्रगट है, उसके द्वारा वह ज्ञानस्वरूप त्रिकाल है, ऐसा जाना जा सकता है। गजब बातें हैं। कल आया था न? आत्मा अजायबघर है, इसमें अनन्त गुणरूप अजायब से भरपूर है। आहाहा! वर्तमान ज्ञान से इसे जाने परन्तु ज्ञात हो, वह ज्ञान तो अन्दर अनन्त और अमाप है। आहाहा! समझ में आया? इसमें अता-पता हाथ नहीं आता, इसलिए बेचारा क्या करे! अरे रे! अनन्त काल से ऐसे... अन्तर इन्द्रियों को बन्द करके आहाहा! और इन्द्रियों से विषय हो, उसका भी लक्ष्य छोड़कर और मन के लक्ष्य से जो रागादि हो, उसका भी लक्ष्य छोड़कर, अन्तर के चैतन्यस्वभावी भगवान को चैतन्यलक्षण से अनुभव करना, यह सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की विधि है। यह वस्तु है क्योंकि यह प्रभु चैतन्यबिम्ब है, इसे चैतन्य की दशा प्रगट है, यह इसका ज्ञान लक्षण है। इस लक्षण के द्वारा अन्दर जा, देख, तो तुझे अनुभव होगा। आहाहा! और यह ज्ञान की पर्याय स्व को जानेगी तो अन्दर में अद्भुत अनन्त गुण का पिण्ड-अनन्त गुण भरे हैं। आहाहा! उसे भी यह ज्ञान देखेगा। अरे! ऐसी बातें हैं!

पूरा फेरफार... फेरफार (हो गया है)। मार्ग ऐसा है, बापू! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा कहते हैं, ये मुनि ऐसा कहते हैं। भाई! तू तुझे पकड़कर अनुभव कब कर सकेगा? कि ज्ञान की पर्याय को लक्षण को पकड़कर वहाँ जायेगा तो अनुभव कर सकेगा। किसी

राग की क्रिया से... आहाहा! दान की क्रिया, करोड़ों के दान दिये हों, उसमें राग मन्द किया हो... किया हो तो... उससे भी भगवान ज्ञात नहीं होगा। ऐ शान्तिभाई! तब फिर यह सब क्या है? तब दान करना या नहीं करना? यह भाव होता है। राग की मन्दता का (भाव होता है) आहाहा! परन्तु उससे आत्मा ज्ञात हो अथवा उससे आत्मा प्राप्त हो, उससे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो, यह वस्तु नहीं है। आहाहा!

इसलिए **चैतन्य-लक्षण प्रगट है,...** व्यक्त कहा न व्यक्त? '**व्यंजित-जीव-तत्त्वम्**' **उसने जीव के यथार्थ स्वरूप को प्रगट किया है...** आहाहा! जानने की दशा जो लक्षण है, वह प्रगट है, उसने पूरे तत्त्व को प्रगट कराया है। आहाहा! जीव के यथार्थस्वरूप को उसने प्रगट किया है। आहाहा! उस ज्ञान की पर्याय को ज्ञायकभाव की ओर झुकाने पर, उसने ज्ञायक को प्रगट किया है। आहाहा! पर्याय जो ज्ञान की है... अरे! कठिन पकड़,... इसे अन्दर में झुकाने पर, चैतन्यबिम्ब का उसे अनुभव होता है। आहाहा! इसलिए '**व्यंजित**' उसके - **जीव के यथार्थ स्वरूप को...** ज्ञानलक्षण ने प्रगट किया है। आहाहा! समझ में आया?

वास्तविक जो भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का कन्द प्रभु, वस्तु अनादि ऐसी ही है वह, इसे वर्तमान ज्ञानलक्षण से यह चीज़ यह है-ऐसा प्रगट करता है। आहाहा! देव-गुरु और शास्त्र की भक्ति, वह राग है, उससे भी आत्मा जाना नहीं जा सकता। आहाहा! गजब बातें हैं। भगवान तीन लोक के नाथ साक्षात् समवसरण में विराजते हों, उनकी भक्ति, साक्षात् सर्वज्ञ परमेश्वर (की भक्ति), वह भी राग है। परद्रव्य की ओर का झुकाव है, वह राग है। आहाहा! उससे आत्मा नहीं जाना जा सकता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परन्तु रागरहित जो अन्दर ज्ञान है, उस ज्ञान के लक्षण से जीव तुझे प्रगट दिखाई देगा। आहाहा! गजब बात है। आहा!

देव, गुरु और शास्त्र की भक्ति से भी ज्ञात हो, ऐसा नहीं है, प्रभु तो ऐसा है। आहाहा! क्योंकि पर के ओर की भक्ति का झुकाव तो राग का है। वह स्व सन्मुख का झुकाव नहीं है। आहाहा! चैतन्य का झुकाव चुकाना हो तो ज्ञानलक्षण से झुकाव चुकेगा। आहाहा। ऐसा मार्ग है। अभी तो फेरफार (करके) बिगाड़ दिया है। अरे...!

मुमुक्षु : बाहर देखने से तो हमें सब कुछ दिखायी देता है, अन्दर देखने से कुछ दिखायी नहीं देता है तो विश्वास कैसे आये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर देखने जाता कहाँ है ? देखने जाये तो दिखायी दे न ? आँखें उघाड़े तब दिखायी दे न ? इसी प्रकार ज्ञाननेत्र उघाड़े और अन्दर देखे तो दिखायी दे न ? नहीं देखता, ऐसा भी निर्णय किसने किया ? मैं दिखायी नहीं देता, यह निर्णय किसमें किया ? इस ज्ञान की पर्याय में निर्णय किया, यही ज्ञान है। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो अपूर्व बातें हैं, बापू ! आहाहा ! जन्म-मरण के चक्कर में अनादि से पड़ा है, उसका अन्त लाने की यहाँ बातें हैं, बापू ! बाकी तो सब बहुत किया-भक्ति की, व्रत पालन किये.. आहाहा !

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा त्रिकाली ज्ञानस्वरूप है, उसकी वर्तमान पर्याय में भी ज्ञान अंश प्रगट है। आहाहा ! वह ज्ञान अंश जो प्रगट है, उस लक्षण से त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव है, उसे पकड़, उसका अनुभव कर; उससे अनुभव हो सकेगा, क्योंकि वह (प्रगट ज्ञान अंश) उसका वास्तविक लक्षण है। आहाहा ! समझ में आया ?

जानने की पर्याय प्रगट है या नहीं ? हें ? यह राग है, यह शरीर है-ऐसा जानता कौन है ? यह ज्ञान की पर्याय। यह राग है, यह शरीर है, यह उष्ण है, यह शीतल है, यह स्त्री है, यह पुरुष है, यह मनुष्य है, यह रूखा है, यह जानता कौन है ? ज्ञान की पर्याय। परन्तु यह पर्याय उसे जानती है तो यह पर्याय (जिसे जानती है) उसका लक्षण नहीं; पर्याय तो इस द्रव्य का लक्षण है। आहाहा ! ऐसी बात भी बेचारे को सुनने नहीं मिलती। आहाहा ! कल वहाँ पालीताना गये थे न ! कच्छ में एक महिला आर्यिका है। वह क्या कहलाता है ? गणिनीजी ! बड़ा लट्ठ जैसा शरीर, वहाँ किसी समय धीरजजी जाते हैं, ऐसा कहते थे। इसीलिए उसे बेचारे को लगन थी बहुत समय से, दस वर्ष से। उसमें बराबर बारोठ मिल गया। महाराज एक गणिनीजी है, दस वर्ष से। बापू, कहा भाई ! यह मार्ग दूसरा है। आहाहा ! इस राग और शरीर से भिन्न पड़ी हुई ज्ञान की पर्याय द्वारा आत्मा ज्ञात होता है, इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। फिर दो पुस्तकें दीं। क्या करे ? नरसी केशवजी की धर्मशाला है न। दो पुस्तकें दीं। एक बहिन की और एक कल का अपना। सोगानी का। सोगानी का। बेचारी आर्यिका बैठी थी दूसरी एक बैठी थी युवा थी। क्या करे बेचारी ? मार्ग मिला नहीं। आहाहा !

अरे! हमारे सम्प्रदाय के गुरु हीराजी महाराज थे बेचारे बहुत सज्जन। आहाहा! नरम, परन्तु यह बात सुनने को नहीं मिली थी। अरे रे! क्या करे? वे ऐसी प्ररूपणा हजारों लोगों के बीच करते थे, राजकोट में बड़े-बड़े और जामनगर में (कहते थे) भाई! अहिंसा परमो धर्मः किसी भी जीव को नहीं मारना, यह धर्म है, यह सम्पूर्ण सिद्धान्त का सार है - ऐसा कहते थे। (सत्य) मिला नहीं था, क्या करे बेचारे? अरे रे! *'अहिंसा समयं चेव एता वितम वियाणियां'।* जिसने परद्रव्य की दया पाली, उसने सब जाना। यहाँ कहते हैं परजीव की दया आत्मा पालन नहीं कर सकता और परजीव की दया का भाव है, वह राग है, वह राग बन्धन का कारण है, राग से आत्मा ज्ञात नहीं होगा। अर र! परजीव की दया के भाव से आत्मा ज्ञात नहीं होगा। अब यह बात कहाँ डालना? ए..ई.. सपाणी! कहाँ था तुम्हारे वाडा में वहाँ? (नहीं) नहीं। बड़े भाई इंकार करते हैं।

मुमुक्षु : आत्मा शब्द ही नहीं सुना था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हमें तो यहाँ सब पता है। आहाहा! अरे रे! ऐसी बातें, बापू! आहाहा! परजीव की दया पालने का भाव है, वह राग है और राग है, वह दुःखरूप दशा है, आकुलता है, वह आकुलता जीव का स्वरूप नहीं है। आहाहा! उससे निराकुल भगवान प्राप्त नहीं होता। आहाहा! परन्तु उस राग के काल में जो ज्ञान की पर्याय राग को जानती है तो उस राग का ज्ञान लक्षण नहीं है, ज्ञान का राग लक्षण नहीं है और राग का ज्ञान लक्षण नहीं है। वह ज्ञान लक्षण तो चैतन्यद्रव्य भगवान (का है)। आहाहा! ऐसी बात है।

वह इसने '**व्यंजित-जीव-तत्त्वम्**' उसने जीवतत्त्व को प्रगट किया है। आहाहा! उस ज्ञान की जो पर्याय है... आहाहा! यह बात 'चोटिला' में रतनचन्दजी के एक गुरु थे। लींबड़ी संघणा के रतनचन्दजी शतावधानी (थे)। उनके गुरु थे, मौके पर हम इकट्ठे हो गये। हम फिर किसी को साधु मानते नहीं थे, इसलिए साथ नहीं उतरते थे। उस समय हम किसी को साधु नहीं मानते थे। परन्तु साथ उतरे तो बहुत प्रसन्न हो गये। फिर यह बात हुई कि 'यह ज्ञान क्रियाभ्याम् मोक्ष' कहा है न? कहा—'ज्ञान क्रियाभ्याम् मोक्ष' अर्थात् क्या? आत्मा जो ज्ञानस्वरूप है, उसका ज्ञान करना और उस ज्ञान में स्थिर होना, यह ज्ञान क्रियाभ्याम् मोक्ष है। यह बात चोटिला में हुई थी। उपाश्रय है न, ऊपर कमरे पर बात हुई

थी। स्वीकार किया कि बात तो सत्य लगती है। मैंने कहा - भाई! बापू! मार्ग तो यह है। बात तो सत्य लगती है। एक बात; और दूसरी बात यह उन्होंने स्वयं की, हों! मैंने कहा - भाई! सिद्धान्त शास्त्र में मूर्ति है, मूर्ति पूजा शास्त्र में है। यह बात है, हमें पता है परन्तु अब क्या करें? जो शिष्य पढ़ेंगे तो उन्हें हमारी श्रद्धा नहीं रहेगी। शास्त्र में मूर्ति पूजा है। दो बातें चोटीला के उपाश्रय में हुई थी। सम्प्रदाय में, हों! अभी छोड़ना कठिन पड़ता है। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा अथवा सन्त यहाँ ऐसा प्रसिद्ध करते हैं, प्रभु! तू तुझे जान सके, उसका स्वरूप तो ज्ञान की पर्याय है, उस ज्ञान की पर्याय से ज्ञात हो, वह तेरा स्वरूप है। आहाहा! लाख बात की बात और करोड़ बात की बात (यह है)। आहाहा! यह ज्ञान जो पर को जानने का पर्याय काम करती है, वह ज्ञान कहीं पर का लक्षण नहीं है। इसलिए जो जानने का काम करती है, वह पर्याय जिसका लक्षण है, उसे वहाँ झुका। आहाहा! तो उससे जीव का स्वरूप **व्यंजित**-प्रगट होगा और ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा है, आनन्दस्वरूप है, ऐसा ज्ञान की व्यंजित पर्याय द्वारा जानने से तुझे आत्मा प्रगट दिखायी देगा। आहाहा! कहो शान्तिभाई! कहाँ इसमें निवृत्ति कहाँ थी वहाँ? पुत्र को सम्हालना और स्त्री को सम्हालना और पैसा एकत्रित करना... आहाहा! वह वहाँ उलझा, यह यहाँ उलझा। छोटा वहाँ हांगकांग, लाखों रुपये कमाये, अभी एक लाख रुपये वहाँ भावनगर में दिये थे। परन्तु उसमें क्या हुआ? राग का मन्दभाव किया हो तो वह शुभभाव है, वह कहीं धर्म नहीं है तथा उससे आत्मा ज्ञात हो, ऐसी कोई चीज़ नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो दो बातें ली हैं कि जीव का तत्त्व जो है, उसे चैतन्य लक्षण से जानो क्योंकि चैतन्यपने का लक्षण कहा है, वह योग्य है और वह लक्षण प्रगट है, ऐसी दो बात की है न? क्या कहा यह? जानने के परिणाम से आत्मा ज्ञात होगा, वह जानने की पर्याय प्रगट है। है न? और उससे वह ज्ञात होगा तथा प्रगट होगा। आहाहा। दो बातें की हैं।

भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूपी प्रभु की वर्तमान पर्याय में ज्ञान की व्यक्त पर्याय प्रगट है। शक्तिरूप है, वह एक ओर रखो; यह तो प्रगट है, उसके द्वारा—यह प्रगट है, उसके द्वारा जानने पर जो शक्तिरूप है / अप्रगट है, वह तुझे प्रगट ज्ञात होगा। आहाहा! कितना समाहित किया है। दिगम्बर सन्तों ने गजब काम किया है! आहाहा! केवली के

पथानुगामी-परमात्मा जिनेश्वर के मार्गानुसारी, वे जिनेश्वर पद अल्पकाल में प्राप्त करनेवाले हैं। आहाहा!

दो बातें की हैं कि चैतन्य लक्षण उसे हमने कहा, वह चैतन्य पर्याय प्रगट है। समझ में आया? और उस चैतन्य पर्याय से तू तेरे आत्मा को जान तो वह तुझे प्रगट ज्ञात होगा। प्रगट पर्याय से प्रगट तत्त्व ज्ञात होगा। आहाहा! आहाहा! अब इससे कितना सरल करें? आहाहा! गजब काम किया है। आहा! इतने थोड़े शब्दों में गागर में सागर भर दिया है। आहाहा! प्रभु! तुझे राग से तू ज्ञात नहीं होगा, क्योंकि राग तेरा स्वरूप नहीं है; अमूर्त है परन्तु अमूर्त तो पर में भी है; इसलिए इस अमूर्त से तेरा भिन्नपना नहीं पड़ेगा क्योंकि अमूर्त तो दूसरे द्रव्य भी हैं तो वहाँ तो सब एक हो जायेगा। आहाहा! अमूर्तपने से भी तू तुझे पर से भिन्न नहीं कर सकेगा। एक चैतन्य लक्षण से तू भिन्न कर सकेगा। आहाहा! और वह चैतन्य लक्षण, प्रभु कहते हैं कि तुझे प्रगट है न? पर्याय में कहीं ज्ञान नहीं है? आहाहा! यह समुचित-यह चैतन्य प्रगट है, वह प्रगट **'व्यंजित-जीव-तत्त्वम्' जीव के यथार्थ स्वरूप को प्रगट किया है...** आहाहा! ऐसा कहते हैं प्रभु! कि जीव का लक्षण जो चैतन्य तुझे अभी पर्याय में प्रगट है और उस द्वारा यदि आत्मा को जाने तो वह **व्यंजित** वह द्रव्य तुझे प्रगट होगा। आहाहा!

क्या बात की है! भाषा सादी परन्तु पूरा तत्त्व भर दिया है। सब झगड़े छोड़ दे। आहाहा! उसमें आता है न? भेदज्ञानी को सौंप दिया है। ४९ गाथा में। आहाहा!

मुमुक्षु : सर्वस्व....

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वस्व, आहाहा! राग से नहीं, अमूर्तपने से नहीं। (उससे) भिन्न नहीं पड़ सकता, ऐसा कहते हैं। राग से ज्ञात नहीं होता क्योंकि वह इसका स्वरूप नहीं है; अमूर्तपने से नहीं ज्ञात होता क्योंकि अमूर्तपना तो बहुतों में है, इसलिए भिन्न नहीं कर सकता। अब ज्ञान की पर्याय जो प्रगट है, जो व्यक्त है। आहाहा! उसके द्वारा लक्ष्य जो द्रव्य/ वस्तु, उसका अनुभव कर तो वह वस्तु तुझे प्रगट ज्ञात होगी। प्रगट पर्याय से वस्तु को जानेगा तो वस्तु प्रगट ज्ञात होगी। आहाहा!

ज्ञान की वर्तमान पर्याय... अभी कितनों को ही तो पर्याय का भी पता नहीं होता।

आहाहा! यह वर्तमान जो ज्ञान की पर्याय प्रगट है, उसका लक्षण प्रगट है, कहते हैं। आहाहा! उस लक्षण द्वारा लक्ष्य अर्थात् द्रव्य को पकड़ तो वह द्रव्य तुझे प्रगट होगा, ऐसा द्रव्य है—ऐसा तुझ ज्ञान की पर्याय में भासित होगा। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा धारणा ज्ञान में तो पकड़ में आता है परन्तु उपयोग अन्दर में नहीं झुकता।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इसने पुरुषार्थ नहीं किया और विपरीत है, इसे उसकी गरज कहाँ है इतनी? जिस उपयोग से पकड़ में आता है, उतना उपयोग करता कहाँ है? स्थूल उपयोग से पकड़ में नहीं आता और सूक्ष्म उपयोग से पकड़ में आता है। सूक्ष्म उपयोग तो करता नहीं। बात लॉजिक से है। आहाहा!

मुमुक्षु : सूक्ष्म उपयोग से सूक्ष्म वस्तु कैसे पकड़ में आये, यह समझाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : सूक्ष्म उपयोग जो मतिज्ञान का, श्रुतज्ञान का जो पर्याय है, उस सूक्ष्म उपयोग से पकड़ में आता है और उस सूक्ष्म उपयोग से द्रव्य पकड़ में आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : सूक्ष्म द्रव्य की ओर उपयोग जाये तब पकड़ में आये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह तब जाये, सूक्ष्म उपयोग करे तो वह द्रव्य पर ही जाये। इसका अर्थ यह हुआ कि द्रव्य के आश्रय से जो पर्याय प्रगट हुई, अनुभव की, हों! वह सूक्ष्म है और सूक्ष्म से ही वह पकड़ में आया है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

कितने ही व्रत और तपस्याओं में अटके हैं, कितने ही देव-गुरु और शास्त्र की भक्ति करते-करते कल्याण होगा, इसमें अटके हैं। सब एक ही प्रकार में-मिथ्यात्व में अटके हैं। आहाहा! क्योंकि जो ज्ञानपर्याय है, वह लक्षण तो प्रगट है। जिसका जो लक्षण है, जिसका जो लक्षण है, वह तो प्रगट है। आहाहा! वह भगवान चैतन्यस्वरूप का लक्षण है पर्याय, चैतन्यद्रव्य का, वह तो प्रगट है, अब प्रगट को इस ओर झुका दे; जिसका वह लक्षण है, उस ओर वहाँ उसे झुका दे, आत्मा प्रगट होगा। पर्याय तो प्रगट है, उसे इस ओर झुका, द्रव्य प्रगट हो जायेगा। ऐसी बातें हैं। अरे! ऐसी बातें मिलना कठिन है, बापू! आहा! जिनेश्वर त्रिलोकनाथ परमेश्वर का यह हुक्म है। आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर की वाणी में ऐसा आया, प्रभु! तेरा लक्षण तो प्रगट है न? उस लक्षण द्वारा जो अप्रगट है, वस्तु गुप्त है...

आहाहा! जो पर्याय में आयी नहीं, पर्याय की-व्यक्त अपेक्षा से जो वस्तु पूरी पूर्णानन्द का नाथ गुप्त है, उस लक्षण द्वारा यदि पकड़ेगा तो वह गुप्त, (वस्तु) प्रगट हो जायेगी। आहाहा! आहाहा! इससे अब दूसरा क्या कहें? आहाहा! प्रभु! तू आत्मा है न नाथ! तू स्त्री नहीं, पुरुष नहीं, राग नहीं, द्वेष नहीं, कर्म नहीं। भाई! आहाहा! तथा ज्ञान के लक्षण की पर्याय जितना भी नहीं क्योंकि जिसका लक्षण है, ऐसा जो लक्ष्य वस्तु तो अन्दर पूर्ण पड़ी है। आहाहा! यह इसे करनेयोग्य तो यह है। बाकी सब तो ठीक है। आहा!

मुमुक्षु : दूसरा सब सरल लगता है, झुकाना मुश्किल पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं और यह किया नहीं, इसलिए मुश्किल है। अनादि का अभ्यासी नहीं कभी... आहाहा! श्रुत परिचित-राग से भिन्न है, यह तूने सुना नहीं, यह कहा न चौथी गाथा में? सुना कब कहा जाये कि तुझे ख्याल में आवे कि इस राग से भिन्न है, तब ज्ञान की पर्याय से अभिन्न है। आहाहा! यद्यपि ज्ञान की पर्याय को लक्षण कहा, उससे लक्ष्य को प्रगट कर सकता है, तथापि उस पर्याय में लक्ष्य / वस्तु नहीं आती। पर्याय में उस वस्तु की सामर्थ्य कितनी, यह ज्ञान में आती है। आहाहा!

अब ऐसी बातें। उसका लक्ष्य करता है, ऐसा कहते हैं। ज्ञान की पर्याय जिसका लक्षण है, उसका लक्ष्य करता है। लक्ष्य किया है, तथापि वह चीज़ कहीं पर्याय में आयी नहीं। पर्याय में उस चीज़ की सामर्थ्य कितनी है, यह प्रगट पर्याय में भासित हुआ। आहाहा!

मुमुक्षु : वैसे तो पर्याय में प्राप्त करना है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में, वह पर्याय इस ओर झुकाना, तब प्रगट हुआ, ख्याल में नहीं था - गुप्त था, वह प्रगट हो गया, तथापि वह द्रव्य, पर्याय में आया नहीं। द्रव्य, पर्याय में आ जाये, तब तो वह तो ध्रुव है और पर्याय वह तो अंश है। आहाहा!

धन्य काल! धन्य अवसर! बापू, आहाहा! ऐसी बात। जिसका वह लक्षण है, वह उसे पकड़े और वह लक्षण है, वह तो प्रगट तो है प्रभु! आहाहा! बिल्कुल प्रगट ही न हो तो उससे बतलाना उसे कठिन पड़े। आहाहा! क्या श्लोक है! आहाहा! इन श्वेताम्बर के बत्तीस सूत्र पढ़े तो भी उसमें से एक ऐसा श्लोक नहीं निकलता। आहाहा! बत्तीस सूत्र तो कितनी ही बार पढ़े हैं। आठ महीने में हमेशा सम्प्रदाय में तीस सूत्र-चन्द्र प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति एक बार पढ़े थे (संवत्) १९७६ में। यह बात नहीं मिलती। आहाहा!

यहाँ कहते हैं - आहाहा! एक तो यह बात की है कि प्रभु! तू तो रागरूप नहीं क्योंकि रागरूप होवे तो हमेशा राग रहना चाहिए। सिद्धदशा में राग नहीं रहता, इसलिए तू रागरूप नहीं है, वह तेरा स्वरूप ही नहीं है। अब तू अमूर्त है, ऐसा यदि कहना चाहे तो अमूर्त तो दूसरी चीज़ें भी हैं—धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल (भी अमूर्त हैं)। तो उनसे तू तेरे आत्मा को भिन्न नहीं कर सकेगा। अमूर्तपने में तो सब शामिल हो जायेंगे। आहाहा!

अब तुझे भिन्न करना हो, तब तो ज्ञानपर्याय जो लक्षण है, वह लक्ष्य का लक्षण है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है। आहाहा! समझ में आया? समझ में आये इतना समझना, बापू! यह तो परमात्मा के घर की बातें हैं। आहाहा! वीतराग सीमन्धर परमात्मा प्रभु महाविदेह में विराजते हैं, उनकी यह वाणी है, यह सब सन्तों द्वारा आयी है। आहाहा! इसमें वाद-विवाद और झगड़ा खड़े करे-व्यवहार से होता है और व्यवहार से होता है... वह तो यहाँ तक कहते हैं और ज्ञानसागर, छठवें गुणस्थान तक व्यवहार ही होता है, ऐसा कहते हैं। अर र! ये ज्ञानसागर है न, समयसार, उसमें पढ़ा था। छठे गुणस्थान तक व्यवहार होता है। अरे प्रभु! व्यवहार बारहवें तक होता है परन्तु निश्चय हो उसे न? आहाहा! जिसने जीव का आश्रय लिया है, ज्ञान लक्षण से ज्ञान को पकड़ा है, उसे जो कुछ अधूरी रागदशा रही, उसे व्यवहार कहा जाता है परन्तु उसको अकेला व्यवहार ही है (तो वह) मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! निश्चय के बिना व्यवहार कैसा? आहाहा! चौथे गुणस्थान से निश्चय-स्व का आश्रय शुरु हो जाता है। आहाहा! पश्चात् पूर्ण आश्रय नहीं, इसलिए राग का भाव आये बिना रहता नहीं, तथापि वह व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान है, व्यवहार किया हुआ प्रयोजनवान है और व्यवहार से आत्मा को लाभ होगा; इसलिए प्रयोजनवान है - ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : तिल-तुषमात्र परिग्रह हो तो उसे शुद्धोपयोग कैसे कहा जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वहाँ तक मुनिपना माने तो मिथ्यादृष्टि है। वस्त्र का एक टुकड़ा रखकर हम मुनि हैं, ऐसा माने (तो वे) निगोद जानेवाले हैं। भगवान का वचन है, कुन्दकुन्दाचार्य का (कथन है)। नवतत्त्व की भूल—वस्त्र का टुकड़ा रखकर मुनिपना माने वहाँ नवतत्त्व की विपरीतता / भूल है। आहाहा! यह ककड़ी के चोर को फाँसी की सजा - ऐसा नहीं है। उसने नवतत्त्व का बड़ा गुनाह किया है। आहाहा! ऐसा मार्ग बहुत कठिन है, बापू! परन्तु वस्तु तो वस्तु यह है। आहाहा!

चेतनत्व को जीव का लक्षण कहा है, वह योग्य है। एक बात। **वह (चैतन्य)-लक्षण प्रगट है,...** दो बात। चैतन्य लक्षण कहा, वह योग्य है—एक बात; वह चैतन्य लक्षण प्रगट है-यह दो बात। उसे चैतन्य पर दृष्टि की, इसलिए चैतन्यद्रव्य प्रगट होता है, यह तीसरी बात। आहाहा! प्रगट होता है, इसका अर्थ कि है, वह है-ऐसा पर्याय में भासित हुआ। वरना तो है तो है। आहाहा! उसे प्रगट पर्याय में भासित हुआ। ओहोहो! यह वस्तु महाप्रभु आनन्द का दल ज्ञायकभाव पूरा प्रगट है। पर्याय जहाँ ऐसे झुकी तो इसे प्रगट दिखता है। आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा! एक मध्यस्थता से सुने (तो पता पड़े कि) मार्ग तो यह है। आहाहा!

और वह अचल है... आहाहा! इस पर्याय ने जिस द्रव्य को पकड़ा, वह द्रव्य अचल है और **चलाचलतारहित है।** आहाहा! जीव के यथार्थ स्वरूप को प्रगट किया है-ऐसा कहा न? और वह अचल है। त्रिकाली वस्तु ध्रुव **चलाचलता रहित, सदा विद्यमान है। जगत उसी का अवलम्बन करो!** जगत् अर्थात् जगत के हे भव्य जीवों! आहाहा! उस भगवान का आलम्बन करो। आहाहा! अरे रे! कहीं समय मिलता नहीं, निवृत्ति मिलती नहीं और ऐसा अपूर्व मार्ग। यहाँ परमात्मा... सन्त, वे परमात्मा की ही बात करते हैं।

हे जगत के जीवो! आहाहा! वह आया था न पहले? **'जगत न पश्यंति'** पहले आया था न? राग से जगत के जीव देख नहीं सकते, परन्तु ज्ञान से जगत के जीव देख सकेंगे। समझ में आया? ऊपर आया था न? **जगत न पश्यंति।** आहाहा! अमूर्तपने का, राग का आश्रय करके जगत जीव को नहीं देख सकेगा। जबकि ज्ञानपने के लक्षण से वह देख सकेगा। इसलिए हे जगत के जीवों! **उसी का अवलम्बन करो।** आहाहा! लक्षण की पर्याय को द्रव्य का आलम्बन दो। पर्याय वहाँ रुक रही है, उसे द्रव्य का आलम्बन दो। जिसका लक्षण है, उसका आलम्बन दो। आहाहा! आहाहा! ऐसी बातें हैं। अरे प्रभु! जगत के जीव **उसी का अवलम्बन करो! (उससे यथार्थ जीव का ग्रहण होता है।)** आहाहा! चैतन्य पर्याय द्वारा अन्तर में यथार्थ लक्ष्य जाना जा सकता है। यथार्थ जीव का ग्रहण होता है। देखा? पर्याय-ज्ञान की पर्याय द्वारा अन्दर जाने पर उस यथार्थ जीव का ग्रहण होता है। सम्पूर्ण जीव कैसा है, वह लक्षण द्वारा पकड़ में आ जाता है - ग्रहण होता है। आहाहा!

लो! एक श्लोक हुआ, एक घण्टा हुआ, तीन मिनिट बाकी रहे, लो! आहाहा!

मुमुक्षु : घोलन करने जैसा श्लोक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : घोलन करने जैसा है। आहाहा!

भावार्थ-निश्चय से... अर्थात् वास्तव में रंग-रागादि। वर्णादि भाव में रागादि भाव आ गये। रंग और राग आ गये। **जीव में कभी व्याप्त नहीं होते...** रंग और राग, संहनन, संस्थान आदि तथा राग-द्वेष पुण्य और पापभाव वे जीव में कभी व्याप्त नहीं होते, जीव में कभी कायम नहीं रहते। आहाहा! **इसलिए वे निश्चय से जीव के लक्षण हैं ही नहीं;...** जीव में कभी व्याप्त नहीं होते अर्थात् जीव में सदा नहीं रहते। **इसलिए वे निश्चय से जीव के लक्षण हैं ही नहीं; उन्हें व्यवहार से जीव का लक्षण मानने पर भी अव्याप्ति नामक दोष आता है, क्योंकि सिद्ध जीवों में वे भाव व्यवहार से भी व्याप्त नहीं होते।** सिद्ध जीव में पर्याय में भी वह राग नहीं है। व्यवहार से भी नहीं है। आहाहा! आहाहा! **इसलिए वर्णादि...** और रागादि का **आश्रय लेने से जीव का यथार्थस्वरूप जाना ही नहीं जाता;...** रंग और राग का आश्रय करने से... आहाहा! भगवान आत्मा जाना नहीं जा सकता।

यद्यपि अमूर्तत्व सर्व जीवों में व्याप्त है... इसमें एक में डाला था रंग और राग। अब तीसरा अलग लिया एक। **यद्यपि अमूर्तत्व सर्व जीवों में व्याप्त है, तथापि उसे जीव का लक्षण मानने पर अतिव्याप्ति नामक दोष आता है,...** क्योंकि आत्मा में भी अमूर्तपना है और धर्मास्तिकाय में भी है तो अतिव्याप्ति हो गया। वह कोई समुचित-उचित लक्षण नहीं हुआ। आहाहा! धर्म-अधर्म, आकाश और काल-इन चार द्रव्यों में अमूर्तपना होने से अमूर्तपना जीव में व्याप्त है तथा चार अजीव द्रव्यों में भी व्याप्त है। इस प्रकार अतिव्याप्ति दोष आता है। अतिव्याप्ति अर्थात् अपने अतिरिक्त भी दूसरों में भी हो। पहले में अव्याप्ति अर्थात् अपनी प्रत्येक अवस्था में व्याप्त नहीं है, वह अव्याप्ति है और अपने अतिरिक्त पर में भी है, उसे अतिव्याप्ति कहते हैं। आहाहा! **इसलिए अमूर्तत्व का आश्रय लेने से भी जीव का यथार्थ स्वरूप ग्रहण नहीं होता है।**

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)